चतुर्थ अध्याय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में खेतिहर मजदूरों का संघर्ष और चुनौतियाँ

भारतीय समाज में किसान और खेतिहर मजदूर समाज का एक ऐसा वर्ग है जो सदियों से शोषण का शिकार होता रहा है। इसमें भी खेतिहर मजदूर दोहरे शोषण का शिकार है। एक तो उसे किसान के शोषण का शिकार होना पड़ता है, दूसरा समाज के शोषण का भी शिकार होना पड़ता है। खेतिहर मजदूरों में सदियों से शोषित, उत्पीड़ित, दलित एवं आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग के लोग आते हैं, जो अपनी जीविका दूसरों की भूमि पर काम करके चलाते हैं।

एक खेतिहर मजदूर अपने बचपन से लेकर मृत्युपर्यंत मेहनत-मजदूरी ही करता है, किन्तु उसकी आर्थिक आवश्यकताएं जीवनभर पूरी नहीं हो पाती हैं। खेतिहर मजदूर का बेटा अपने खेलने और पढ़ने की उम्र से ही दूसरों के खेत में या घर पर बेगार करता है। जो परिवार जी-तोड़ मेहनत-मजदूरी करने के बाद भी अपनी आवश्यकताएं न पूरी कर पाता हो, वह अपने बच्चों को शिक्षा कहाँ से उपलब्ध करा पाएगा। शायद खेत मजदूरों का विकास इसलिए भी नहीं हो पाता है क्योंकि उनका शैक्षिक स्तर बहुत ही निम्न है। इस संबंध में जी.एस. भल्ला ने लिखा है- “खेतिहर मजदूरों की शैक्षणिक योग्यता और दक्षता का स्तर भी बहुत नीचे है, यह उनकी गतिशीलता में एक बाधक है।”[1] निम्न वर्ग की विभिन्न जातियां जो निर्धन एवं भूमिहीन हैं उनकी गणना खेतिहर मजदूरों में की जाती है।

मजदूर वर्ग ऐसा वर्ग है जो वर्णव्यवस्था कायम होने से आज तक मुसीबतों का ही सामना करता आ रहा है। आज भी इनके साथ उच्च वर्ग के लोगों द्वारा जैसे कि भूस्वामी एवं पूँजीपतियों द्वारा अभद्र व्यवहार ही किया जाता है। किसान जो स्वयं जमींदार के शोषण का शिकार है वह अपने से निचले तबके

के लोग यानी कि खेतिहर मजदूर का शोषण करता है। दरअसल समाज में शोषण की परंपरा श्रृंखलाबद्ध रूप से दृष्टिगोचर होती है। जमींदार किसानों का शोषण करते हैं तो यही नीति किसान खेतिहर मजदूरों के साथ अपनाते हैं और खेतिहर मजदूर अपने से नीचे के लोग यानी कि धोबी, हज्जाम आदि का शोषण करते हैं। किसान एवं खेतिहर मजदूर विवशतावश शोषण करते हैं, किंतु जमींदार किसानों एवं खेतिहर मजदूरों को अपने फायदे के लिए प्रताड़ित करते हैं- “किसान की कमाई का न सिर्फ मुनाफा ही जमींदार ले लेता है, बल्कि उसकी मजदूरी का भी एक भाग लेता है, जिससे उसे विवश होकर महाजनों और बैंकों से ऋण लेने में अत्यधिक सूद देना पड़ता है और इस प्रकार उसकी खेती घाटे में चलती है। जमींदार के शोषण ने पहले तो उसकी मजदूरी तक छीन कर उसे जीविका और पूंजी से हीन बना दिया। फलतः खेती जारी रखने और खाने के लिए जुल्मी सूद पर उसे ऋण लेना पड़ा और दोनों के चुकाने में उसे खेती में घाटा लगा और वह दिवालिया हो गया। यही क्रम बराबर जारी है। ऐसी हालत में बेबसी के चलते असंगठित रूप से हलवाहे आदि का शोषण करता है।”[2] आज के मशीनी युग ने मजदूरों की समस्याओं को और भी बढ़ाने का काम किया है। आज उनके सामने गाँव में मजदूरी का संकट उत्पन्न हो गया है। उन्हें काम की तलाश में शहर की ओर पलायन करना पड़ता है। भूस्वामी जो स्वयं अपनी भूमि पर खेती नहीं करते हैं। वे मजदूर लगाकर या मशीन के प्रयोग से खेती करवाते हैं। इस कारण से खेतिहर-मजदूरों के समक्ष मजदूरी का संकट उत्पन्न हो गया है। सुखविंदर के अनुसार- “जब कोई भूस्वामी किसी नयी मशीन या सुधरे हुए औजार का इस्तेमाल शुरू कराता है, तो वह किसान (जो उसके लिए काम करता था) के औजार को हटाकर अपने औजार लगाता है। नतीजतन, वह लेबर सर्विस से पूंजीवादी खेती की व्यवस्था के मातहत आ जाता है। कृषि मशीनों के फैलाव का मतलब होता है पूंजीवाद द्वारा लेबर सर्विस का खात्मा। कृषि में मशीनरी का सुव्यवस्थित इस्तेमाल पितृसत्तात्मक ‘मध्यम’ किसान को उतनी ही कठोरता से ढकेलकर बाहर करता है जितनी कठोरता से वाष्पचालित करघा दस्तकार बुनकर को बाहर करता है।”[3] इन कारणों के परिणामस्वरुप दिन-प्रतिदिन मजदूरों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है, किन्तु मजदूरों की पारिश्रमिक

आय में उनके गुजारे लायक भी वृद्धि नहीं की जाती है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में खेतिहर मजदूरों की इन्हीं समस्याओं को हम देखते हैं :

4.1 शोषण के विविध रूप

हमारे समाज में खेतिहर मजदूर को अनेक तरह से शोषित करने की प्रथा रही है। देश में जमींदारी उन्मूलन के बाद से जमींदारी प्रथा का तो खात्मा हो गया, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से वह आज भी समाज में व्याप्त है। अब देश में जमींदारों की जगह बड़े किसान आ गए हैं, जिनका उद्देश्य खेती से सिर्फ अपना मुनाफा कमाना होता है। वे अपने इसी मुनाफे के लिए खेतिहर मजदूरों को अपने शोषण का शिकार बनाते हैं। वे न तो उन्हें उचित मजदूरी देते हैं न उनके साथ मानवीय व्यवहार ही करते हैं। बेगार कराना तो वे अपना जन्मजात अधिकार समझते हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार- "जमींदारी प्रथा ख़त्म हुई। लेकिन ख़त्म होने से जो नई तस्वीर सामने आई, उसमें पुराना जमींदार नया धनी किसान बन गया। जमीन उसने अपने पास रखी या अपने भाई-भतीजों में बाँट दी। पहले वहां वह मुख्यतः अपनी और गाँव की जरूरतों के लिए खेती करता था, अब वह बिकाऊ माल पैदा करने के लिए खेती करने लगा। गाँव में पुराना जमींदार पूंजीवादी किसान बनने लगा। बना तो वह पूंजीवादी किसान, लेकिन खेत-मजदूरों को पूंजीवादी ढंग से निश्चित पगार न देना चाहता था। यह मुख्य कारण है कि उत्तर भारत के अनेक केंद्रों में और आंध्र के अनेक केंद्रों में हरिजनों पर विशेष अत्याचार की कहानियां अखबारों में छपा करती हैं।"[4] अंग्रेजों के आगमन से पूर्व खेतिहर मजदूरों का जीवन बहुत कष्टदायक नहीं होता था। अंग्रेजी शासन में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद से ही मजदूरों की स्थिति खराब होती गई। मालगुजारी वसूल करने के लिए अंग्रेजों ने जो जमींदारी प्रथा कायम की उसने खेतिहर मजदूरों के शोषण को आधार दिया। जमींदार खेतिहर मजदूरों से खेतों में काम करवाने के साथ-साथ घर पर भी बेगार करवाते थे। जमींदारी व्यवस्था ने कृषि मजदूरों को बंधुआ मजदूर बनने पर विवश कर दिया। जमींदार मजदूरों का शारीरिक, आर्थिक एवं मानसिक रूप से शोषण करते थे।

भीमसेन त्यागी का भीमसेन त्यागी का 'जमीन' उपन्यास स्वतंत्रता से पूर्व किसानों एवं खेतिहर मजदूरों की स्थिति को आधार बनाकर लिखा गया है। जमींदारों द्वारा मजदूरों का शोषण इस उपन्यास की मूल समस्या है। महकू ठाकुर चन्दन सिंह के खेतों में काम करता है। महकू के दादा ने कभी ठाकुर चन्दन सिंह के दादा से दो बिस्सी का कर्ज लिया था और उसमें ब्याज जुड़ते-जुड़ते इतना बढ़ गया है कि महकू क्या उसकी आने वाली कई पीढ़ियाँ भी ठाकुर का कर्ज नहीं चुका सकतीं हैं। ठाकुर हर दशहरे पर उससे अंगूठा लगवाता है महकू को इन सबके बारे में कुछ नहीं पता। वह बस इतना जानता है कि उसके दादा ने चन्दन सिंह के दादा से दो बिस्सी का कर्ज लिया था- "कुल जमा बीस तक गिनती जानता है महकू। लम्बा-चौड़ा हिसाब उसकी समझ में नहीं आता। समझने से फायदा भी क्या ! और खून सूखेगा। सूद दर सूद लगते-लगते कर्ज पहाड़ बन चुका है। महकू को मालूम है कि अपनी खाल बेचकर भी वह ठाकुर का कर्ज नहीं चुका सकता। तो फिर इसके अलावा क्या चारा है कि वह और उसका कुनबा ठाकुर की बेगार करता रहे।"[5] महकू की पीढियां चन्दन सिंह के घर बेगार करती आ रही हैं, किंतु उसे महकू पर जरा भी तरस नहीं आता है।

बेगारी की प्रथा का जन्म वहां से होता है, जहाँ से जमींदारी प्रथा की शुरूआत होती है। खेतिहर मजदूर की जीविका का आधार उसका श्रम ही होता है किंतु उससे उसके परिवार का गुजारा नहीं हो पाता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही वह महाजन या जमींदार से कर्ज लेता है। चूंकि मजदूरों के पास कोई संपत्ति भी नहीं होती है कि वह उसे गिरवी रख सके, इसलिए कर्ज न चुका पाने की स्थिति में वह स्वयं को जमींदार के पास बंधक रख देता है। सब्यसाची भट्टाचार्य के अनुसार- "ऋण देने वाला इन मजदूरों के समूचे श्रम का मालिक था। खाना-कपड़ा के अलावा आमतौर पर उन्हें कोई वेतन नहीं दिया जाता था। पास में पैसे न होने से इन मजदूरों के लिए कर्ज चुकाना प्रायः असंभव था। कानूनी तौर पर गलत होते हुए भी प्रथा के रूप में यह दासता वंशक्रम से चलती रहती थी। एक बंधुआ मजदूर का उत्तराधिकारी खुद को बंधुआ बना लेता था। ऋणदाता प्रायः मालिक की तरह इन बंधुआ मजदूरों को

दूसरे मालिक को सौंप सकता था ।"[6] महकू ठाकुर चंदन सिंह का बंधुआ ही है जिसे ठाकुर के इशारों पर ही चलना पड़ता है। कभी-कभी तो महकू के घर में अन्न का एक दाना भी नहीं रहता है। बच्चों को भूखे पेट सुलाने की नौबत आ जाती है। महकू जब तक चार-बार चन्दन सिंह के सामने जाकर गिड़गिड़ा न ले तब तक ठाकुर उसे अन्न का एक दाना भी नहीं देता है- "महकू जानता है-ठाकुर चन्दन को ! चार चक्कर कटवाये बिना सेर भर दाने भी नहीं दे सकता ! इसीलिए घर में चार दिन का अनाज रह जाता है, तभी महकू माँगना शुरू कर देता है। अपनी बात को सच्ची साबित करने के लिए कभी भगवान की तो कभी धरती माता की कसम खाता है। इसके बावजूद ठाकुर एक-एक दिन टरकाता रहता है। और कभी न कभी चूल्हा ठंडा ही रह जाता है ।"[7] महकू दिन-रात चन्दन सिंह के खेत में परिश्रम करता है, किन्तु उसे भरपेट भोजन भी नहीं नसीब होता है।

जमींदार मजदूरों पर अपना मालिकाना हक समझते हैं। ठाकुर चन्दन सिंह के परदादा ने महकू के पुरखों को गणेशपुर गाँव में बसाया था। तभी से गाँव की एक निम्न जाति का यह कुनबा चन्दन सिंह का बंधुआ बन गया है। वह जब चाहे तब उनको अपने खेतों में और घर पर बेगार करने के लिए बुला सकते हैं। इसके बदले ठाकुर कभी-कभी उनको मजदूरी भी दे देता है लेकिन यह उसकी इच्छा पर निर्भर है- "मर्द-औरतें, सब ठाकुर चन्दन सिंह के खेतों में काम करते हैं। मजदूरी दो सेर मोटा अनाज, जिस दिन दिहाड़ी लग जाए ! औरतों की मजदूरी आधी। लेकिन यह मजदूरी का अनाज भी ठाकुर की मर्जी पर है। कब दे, कब न दे ! किसी ढंग से दो जून रोटी मिल जाती है। मेहरबानी है ठाकुर की ! दिन फूट रहे हैं। वरना माजरे में किसे नहीं जानता महकू ! लोगों के पेट के जाले भी नहीं टूटते! ।"[8] जमींदार ठाकुर चन्दन सिंह के घर चार नौकर और बेगार के मजदूर हैं। जिनमें महकू के सामने कैसी भी परिस्थिति हो उसे चन्दन सिंह के यहाँ काम करना ही पड़ता है।

जमींदार खेतिहर मजदूर या अपने बंधुआ मजदूरों के साथ बहुत ही अमानवीय व्यवहार करते हैं। ये नाममात्र की मजदूरी पर उनसे काम करवाते हैं। ज्यादातर कामों के लिए ये मजदूरों को कोई मजदूरी

नहीं देते हैं। इन मजदूरों के घर की स्त्रियाँ, उनके पुत्र और पुत्रियाँ तक जमींदारों के घर बेगार करने पर मजबूर किए जाते हैं। जमींदारों के घर पर चरवाही, सब्जी उगाना, पशुपालन, पानी भरना आदि कार्य तो मजदूरों से बेगार के तौर पर कराये जाते हैं। इन कार्यों के लिए उन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता है। खेतिहर मजदूर जमींदार द्वारा दी गई कुछ बीघे भूमि और उनके द्वारा दी गई मजदूरी पर आश्रित होते हैं। मजदूर के खुद के खेत परती रह जाएं किंतु उन्हें पहले जमींदारों के खेतों को जुताई-बुआई करनी पड़ती है। स्वामी सहजानंद सरस्वती के अनुसार- "जमींदारों की ओर से हर अमले को एक दो, चार बीघे खेत मिलते हैं जिन्हें जोत-बो कर वह अपनी गुजर करता है, कारण वेतन तो कुछ होता नहीं। अब गांवों में जाकर कोई पूछे और पता लगावे कि अमलों के कितने बैल और हल खेतों की खेती के लिए हैं तो एक का भी पता न मिलेगा। फिर भी उनके खेत सबसे पहले जोते बोए जाते हैं, चाहे बेचारे किसान के खेत यों ही पड़े रह जाए। खेतों के लिए बीज वगैरह भी भरसक किसानों से ही लिए जाते हैं और हरवाहे का काम तो वे लोग बिना मजूरी के करते ही हैं। मजूरी मांगने की हिम्मत करना तो अपने को मिटाने का सामान मुहैया करना है।"[9] चन्दन सिंह मजदूरों के साथ जानवरों जैसा सुलूक करता है। महकू दिन भर चन्दन सिंह के खेत में काम करता रहता है, शाम तक वह थककर चूर हो जाता, फिर भी उसे ठाकुर के घर के कामों से फुरसत नहीं मिलती है। घर पहुंचकर वह बुखार से तपने लगता है। बीमारी के कारण वह ठाकुर के यहाँ काम करने नहीं जा पाता है। ठाकुर अपने नौकरों से महकू के लिए बुलावा भेजता है। महकू की हालत देखकर उसे जरा भी दया नहीं आती है। उसे महकू के जीने-मरने से कोई मतलब नहीं उसे तो सिर्फ काम चाहिए।

यह सच है कि जमींदार के लिए खेतिहर मजदूर एक गुलाम ही होता है जिसे वह जब चाहे तब किसी भी तरह से इस्तेमाल कर सकता है। जिस तरह से चंदन सिंह महकू का इस्तेमाल करता है। वह महकू को कुट्टी काटने के लिए कहता है। बेबस महकू चुपचाप बैठकर कुट्टी काटने लगता है- "महकू को तेज बुखार है। आँखे कड़ुवा रही हैं। गनूदगी का झोंका आता है तो उसका हाथ बहक जाता है। वह फ़ौरन संभलता है और फिर मुस्तैदी से कुट्टी काटने लगता है। इस बार ऐसा झोंका आया, जो महकू की चेतना

को ले गया। मूठ पर पकड़ ढ़ीली पड़ गयी। उसने गंडासा ऊपर उठाया धड़ाम से नेह पर दे मारा। गंडासा जहाँ गिरा, वहां बाजरे की मूठ नहीं, महकू का बायाँ हाथ था। एक ही झटके में महकू की चारो उँगलियाँ चिटक कर दूर जा गिरी और छिपकली की कटी पूँछ की तरह तड़पने लगीं। हाथ से एक साथ खून के चार फव्वारे फूट निकले।”[10] चन्दन सिंह को महकू की उँगलियाँ कटने का कोई गम नहीं, क्योंकि उसके लिए महकू महज एक मशीन है जो उसके घर काम करता है। अब उसने महकू को इस हालत में भी नहीं छोड़ा कि वह मजदूरी करके अपने परिवार का पेट पाल सके। जमींदार को अपने भोग-विलास के आगे मजदूरों का कोई दुःख और उनकी कोई बेबशी नहीं नजर आती है। मिशेल बो ने भी इस बारे स्पष्ट लिखा है- “मजदूर कानूनी रूप में और वास्तव में संपत्तिधारी वर्ग का गुलाम है। ऐसा मान्य गुलाम कि किसी सामान की तरह उसे बेचा जाता है, किसी माल की तरह उसका मूल्य चढ़ता और उतरता है।”[11] जमींदार खेतिहर मजदूरों पर कोई भी अत्याचार करें, किंतु मजदूर बेचारे उन्हें चुपचाप सहने को मजबूर होते हैं। वे जमींदारों को उनके अत्याचार के खिलाफ चाहकर भी कुछ नहीं बोल सकते हैं क्योंकि उन्हीं के रहमोकरम पर खेतिहर मजदूर अपना जीवनयापन करता है। यही कारण है कि महकू देर-सवेर जब भी ठाकुर के यहाँ से बुलावा आता है, उनके दरवाजे पर हाजिर हो जाता है क्योंकि ठाकुर के यहाँ काम करने से उसके परिवार को दो जून की रोटी किसी तरह से नसीब हो जाती है। ठाकुर से दुश्मनी मोल लेने का मतलब है अपनी जमीन से भी बेदख़ल होना। महकू तो किसी तरह से अपने दुःख को चुपचाप सह भी लेता है किंतु उसकी पत्नी अनारो महकू की अंगुलियाँ कटने पर ठाकुर को कोसते हुए कहती है- “तेरा नास हो, चन्दन ! गरीब माणस किसी तरह मिहनत-मजूरी करके पेट पाल रहा था। जालम ! तेरे से यो बी नी देख्या गया। अपाहज बनाकर रख दिया।”[12]

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है। यहां पर महिलाओं को कृषि क्षेत्र से जुड़े कई कार्य करने की आजादी नहीं है। इनमें से एक हल चलाना भी है, जो सिर्फ पुरुषों का काम माना जाता रहा है। किंतु आज समाज में महिलाएं खेती-किसानी के हर काम में अपनी भूमिका निभा रही हैं। पति की गैरमौजूदगी

में वे ही घर-परिवार और खेती से जुड़े सभी कार्यों को करती हैं। मैत्रेयी कृष्णराज के अनुसार- "कई महिलाओं ने खेत जोतने के लिए पुरुष श्रमिक नहीं मिलने के कारण, अपनी जमीनों को परती छोड़ दिया। कुछ मामलों में हमने देखा कि महिलाओं ने खुद ही जुताई का काम भी शुरू कर दिया है, जबकि खेत जोतना पुरुषों का काम माना जाता है और महिलाओं के लिए वर्जित है। बदलती परिस्थितियों में महिलाओं के इस पारंपरिक नियम के उल्लंघन को भी स्वीकृति मिल गई है।"[13]

यदि मजदूर जमींदार के खिलाफ जाते हैं जमींदार उन्हें किसी न किसी झूठे इल्जाम में फंसा देते हैं क्योंकि उनके पास पैसा और रुतबा होता है। यही हाल चंदन सिंह चम्पा के पति रतनू के साथ भी करते हैं। वे रतनू को झूठे चोरी के इल्जाम में फंसाकर जेल भेजवा देते हैं। उन्हें पता है कि रतनू के जेल जाने के बाद उसके पास जो थोड़ी बहुत जमीन है वह भी परती रह जाएगी। समाज में महिलाओं को खेती से जुड़े सभी कार्य करने की आजादी नहीं है। चम्पा को अपने खेतों की चिंता है कि वह खेती कैसे कर पाएगी क्योंकि समाज में महिलाओं का खेत में हल चलाना वर्जित है। रतनू और महकू में अच्छी दोस्ती है फिर भी महकू रतनू की पत्नी की मदद करने में डर रहा है क्योंकि वह भी चन्दन सिंह का बंधुआ है। वह चम्पा से कहता है- "लंगड़े चन्दन को पता चलेगा कि मैं तेरा खेत बो रहा हूँ तो वह मुझे खींच कर रख देगा। मुझे अपना तो कितई डर नहीं। आज भी उसका बंधुआ हूँ, कल भी रहूँगा। लेकिन डर यह है कि खेत बिन बोये रह गए तो गजब हो जाएगा !।"[14] जमींदार अपने बंधुआ मजदूरों की पत्नी को भी अपनी जायदाद समझते हैं। महकू तो उसका बंधुआ होने के साथ-साथ कर्जदार भी है। महकू की शादी के बाद गाँव की प्रथानुसार महकू की पत्नी अनारो को ठाकुर चन्दन सिंह का चरण छूने जाना है। अनारो को चरण छूने की प्रथा के पीछे का कारण नहीं पता है और जब उसे इसका कारण पता चलता है तो वह सीधे ही इस प्रथा को निभाने से इनकार कर देती है। वह महकू को उसके साथ हुए वाकये के बारे में बताती है। तब महकू उसे चरण छूने की प्रथा के बारे में बताता है- "किसी रैयत की शादी होती है तो वह अपनी जोरू को लेकर

मालिक के पैर छुवाने ले जाता है। वे दोनों एक रात मालिक के यहाँ रहते हैं बहू की वह पहली रात मालिक की होती है।"[15]

खेतिहर मजदूर की जमींदारों के सामने कोई मर्जी नहीं चलती है। महकू अच्छी तरह जानता है कि अनारो लाख विरोध कर ले, किंतु उसे ठाकुर की सेवा में जाना ही जाना पड़ेगा। वह अपनी तरफ से अनारो को समझाने की कोशिश भी करता है किंतु अनारो को तो चन्दन सिंह से नफरत है। वह महकू की बात सुनकर तिलमिला उठी- "इन जमींदारों ने जैसे जमीन आपस में बाँट रखी है, वैसे ही रैयत रियाया भी। ये रैयत की जोरू को अपनी जियाजाद सिमझै ! तूने पहले क्यूँ नहीं बताया था। बता देता तो मैं कभी वहां न जाती।"[16] महकू अच्छी तरह समझता है कि अनारो की जिद उन पर भारी पड़ने वाली है। वह अनारो को समझाता है कि वह चन्दन सिंह के घर चली जाए नहीं तो चन्दन सिंह उसे जबरन उठवा कर ले जाएगा। अंत में वही होता है जिसका महकू को डर था- "सूरज डूबते ही माजरे के ऊपर सांवले अँधेरे का चंदोवा तन गया। चूल्हों से उठता धुवाँ नीम की चोटी चढ़ गया। अनारो अपने चूल्हे में झीना लगा रही थी कि चार कडंगे जवान घर में घुसे और उन्होंने अनारो को दबोच लिया। एक ने उसका मुंह बंद कर दिया और बाकी उसे उठाकर तेजी से घर के बाहर हो गए...।"[17] अनारो के लाख विरोध करने के बाद भी वही हुआ जो चन्दन सिंह चाहता था। महकू तो बेबस है वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता है। एक बार अनारो चन्दन सिंह के घर गई तो यह एक सिलसिला बन गया। चन्दन सिंह जब भी चाहता अनारो को बुलावा भेज देता था और अनारो को उसके घर जाना पड़ता था।

भूमि व्यवस्था में गैर-मजरूआ ऐसी भूमि को कहा जाता है जिसका उपयोग सामुदायिक कार्यों के लिए किया जाता था। जैसे पशु चराना, चारे का प्रबंध, मरे हुए को दफनाने हेतु, एवं बाजार लगाना आदि कार्यों के लिए। किंतु जमींदारों ने अपने ताकत के बलबूते इस भूमि पर अपना अधिकार जमा लिया। सरकारी दस्तावेजों या रिकार्डों में इसी सार्वजनिक भूमि को गैर-मजरूआ कहा जाता है। इसी भूमि को जमींदार गाँव के गरीब मजदूरों को देते थे और बदले में उनसे बेगार करवाते थे। 'पीपुल्स यूनियन फॉर

डेमोक्रेटिक राइट्स' की रिपोर्ट में इस प्रथा के बारे में उल्लेख इस प्रकार मिलता है- "जमींदार अपनी ताकत के बल पर इस गैर-मजरूआ भूमि पर अधिकार करते चले गए। भूमि-रिकार्डों में ऐसी जमीन को गैर-मजरूआ 'ख़ास' कहा जाने लगा। जो भूमि अभी भी सांझी बनी रही, उसे गैर मजरूआ 'आम' का नाम दिया गया। समय बीतने के साथ, जमींदारों ने इस गैर-मजरूआ ख़ास भूमि के टुकड़ों को लगान पर देना भी प्रारंभ कर दिया जिससे ऐसी ज़मीन पर उनका अधिकार और भी दृढ़ होता चला गया बेशक कानूनी रूप से इस भूमि के निपटारे का अधिकार केवल सरकार के पास था। किंतु जमींदारी-प्रथा के अस्तित्व में रहने तक गैर-मजरूआ ख़ास भूमि पर जमींदारों के इस अधिकार को नहीं ललकारा गया।"[18]

कर्मेंदु शिशिर का 'बहुत लंबी राह' उपन्यास इसी प्रकार के एक गैर-मजरूआ भूमिहीन खेतिहर मजदूर की दशा और उसकी समस्या को बयाँ करता है। महादेव महतो का घर चमरटोली में है। महतो सुमेरन मिसिर का बंधुआ है उन्हीं के अनुसार उसे रहना पड़ता है। सुमेरन मिसिर ने उसे अपनी परती जमीन पर बसा दिया। महतो उसी जमीन को पाने की लालच में मिसिर के घर काम करता रहता है और मिसिर जब चाहते तब उसको घर पर काम कराने के लिए बुला लेते। महतो उसी जमीन के लिए मिसिर की कई बार मिन्नतें कर चुका है। किन्तु उन्होंने आज तक दो धुर जमीन भी नहीं दिया- "सितुहा-भर का कलेजा लिए हैं और ऊपर से बड़कवा बन रहे हैं। किसी गतर लाज हया नहीं। आखिर वह उनका खानदानी आदमी ठहरा। उसने बचपन से ही, दो पुहुत की सेवा करते जिनगी गुजार दी। जब बड़का मालिक जवान थे-महतो उनके घर पहली बार चरवाही पर आया था। तब से आज तक पता नहीं कितने साल गुजर गए ? कभी दो बात बोल भी देते तो वह चुपचाप सह लेता ! आज तक आधी जुबान नहीं खोली। जूना-कुजूना जब भी काम करना पड़ता तो आधी रात को भी हाजिर हो जाता।"[19] महतो जिस जमीन के लिए दिन-रात मिसिर की मिन्नतें करता है, असल में तो वह मिसिर की है ही नहीं, वह तो सरकारी भूमि है। लेकिन महतो को इन सबके बारे में कुछ भी नहीं पता है वह तो इसी बात के अहसान से दबा हुआ है कि मिसिर ने उसे अपनी जमीन पर बसाया है। महतो की पूरी जिंदगी मिसिर के घर की सेवा में ही गुजर रही

है। वह जानता है कि चुपचाप रहकर काम करने में ही भलाई है। ऐसे में खाने को अन्न तो मिल रहा है लेकिन मालिक से झूठ बोलने और दुश्मनी लेने का परिणाम क्या है यह भी उसे भलीभांति पता है।

महतो के साथ-साथ उसकी पत्नी और बेटी मिसिर के घर के कामों में हाथ बंटाती हैं जिसके लिए उन्हें कुछ भी मेहनताना नहीं मिलता है। महतो मिसिर के अत्याचारों को चुपचाप सहता है। उसे पता है घर की जमीन से लेकर उसके पशु तक मिसिर के हैं, इसलिए वह उनसे दुश्मनी मोल लेना ठीक नहीं है। जमींदार खेतिहर मजदूर की इसी विवशता का फायदा उठाते हैं, क्योंकि खेतिहर मजदूर भूस्वामी की दया पर ही अपना जीवनयापन करने पर मजबूर होते हैं। वे जमींदारों के बंधुआ होते हैं इसलिए जमींदार उन्हें अन्य मजदूरों की तुलना में कम मजदूरी देते हैं। सामान्यतः खेतिहर मजदूर अपनी समस्या को दूर करने के लिए या अपना पेट भरने के लिए जमींदारों से कर्ज लेते हैं। कर्ज को चुकाने के लिए ही उन्हें अपने आप को जमींदारों के यहाँ बंधक रखना पड़ता है। प्रधान हरिशंकर प्रसाद के अनुसार- "गरीब किसान जिन लोगों से नियमित रूप से कर्ज लेते हैं या जिनकी जमीन बटाई पर या रहने के लिए लेते हैं उनकी जमीन पर काम करने से मिलने वाली मजदूरी अन्य लोगों के खेतों पर उसी तरह का काम करने पर मिलने वाली मजदूरी से हमेशा कम होती है।"[20]

महतो के पास ऐसा कोई रास्ता नहीं है जिस पर चलकर वह मिसिर के अत्याचार से छुटकारा पा सके। महतो का पूरा परिवार खासकर उसकी पत्नी और उसका बेटा मिसिर के अत्याचार सहने को तैयार नहीं है। लेकिन महतो की विवशता ही उसे चुप रहने पर मजबूर करती है। वह जानता है कि यदि मिसिर ने उसे बेघर कर दिया तो वह और उसका परिवार कहाँ जाएंगे। खेतिहर मजदूर सामान्यतः जमींदार द्वारा दी गई भूमि पर रहते हैं और उन्हीं के द्वारा दिए गए खेत एवं मजदूरी पर जीवनयापन करते हैं। वे चाहकर भी जमींदार से अपना पीछा नहीं छुड़ा पाते, क्योंकि देर-सवेर उनको उन्हीं की मदद लेनी पड़ती है। इसलिए चुपचाप उनके अत्याचार सहने के अतिरिक्त उनके पास और कोई रास्ता नहीं होता है। रोडनी हिल्टन के अनुसार- "विनियम अर्थव्यवस्था के हाशिये पर भूस्वामियों और खेतिहर मजदूरों की सापेक्षिक स्थित

काफी भिन्न थी। मजदूर भाग नहीं सकता था, क्योंकि उसके पास भागने की कोई जगह नहीं थी। सही व्यावहारिक दृष्टियों से वह ऐसे स्वामी की दया पर आश्रित था। जिसने शहरी जीवन की निकटता का कोई सांस्कृतिक दबाव कभी महसूस ही नहीं किया हो।"[21]

महतो अपने बेटे विभूति को समझाता है कि वह कोई ऐसा काम न करे जिससे उसे मालिक के कोप का भाजन होना पड़े। गाँव की सारी सरकारी भूमि, बाग-बगीचे और पोखरों पर जमींदार का कब्ज़ा रहता है। वे समाज की निम्न जातियों को उसका उपयोग नहीं करने देते हैं। यही हाल मिसिर का है वे गाँव के पोखर पर अपना कब्ज़ा जमाये हुए हैं। कोई व्यक्ति यदि उसमें से मछली इत्यादि ले आये तो उसे उसकी बहुत कड़ी सजा भुगतनी पड़ती है। महतो अपनी पत्नी को ऐसे ही एक वाकये के बारे में बताता है जब एक व्यक्ति ने मिसिर के खलिहान से अनाज का एक बोझा चोरी कर लिया था। उसके दुष्परिणाम को वह अपनी पत्नी को सुनाते हुए कहता है- "गाँव का चमार होकर सुमेरन मिसिर का बोझा उठा लिया-अब बचा ही क्या ? बहुत बोले, बहुत पीटे। जब अधमरा हो गया तो उसे चमरटोल के लोग टांगकर ले गए। बोझा पकड़ में आ गया था। फिर भी बिचारे की साल-भर की मनी-मजूरी रोक ली। ऊपर से केस में फंसाकर जेहल भिजवाने की धमकी भी दी।"[22] उसके लाख समझाने के बावजूद विभूति तालाब से मछली चुराकर लाता है। महतो विभूति द्वारा लाई गई मछली को हाथ भी नहीं लगाता है। उसे पता है कि मालिक के गाँव लौटने पर उसकी क्या हालत होने वाली है। मालिक के गाँव लौटने पर उसके परिवार की क्या हालत होती है इन पंक्तियों से पता चलता है- "घर के अंदर-बाहर बिना कुछ खाए, बिना कुछ पिये, महतो का परिवार पड़ा हुआ था। किसी को भी नींद नहीं आ रही थी। सभी जगे हुए, कल आने वाली बिपत की ही सोच रहे थे। अभी तक आसमान साफ़ नहीं हुआ था। बाहर-भीतर किसी को नींद नहीं आ रही थी। आज पता नहीं कितनी पहर की अन्हरिया थी ! ।"[23]

महतो रात-भर जिस बिपत्ति के बारे में सोचकर जग रहा था। सुबह होते ही वह उसके दरवाजे पर आ धमकी। मिसिर के भेजे हुए आदमी लाठी लिए सुबह-सुबह उसके घर पहुंच आए। उन्होंने महतो को

फरमान सुना दिया कि जल्द से जल्द अपने बेटे विभूति को लेकर मालिक के घर पहुंच जाए। इसी विपत्ति के डर से महतो ने दो दिन से अन्न का एक दाना भी नहीं ग्रहण किया था। उसे लग रहा है कि उसके दरवाजे पर साक्षात यमदूत आ गए हैं जो उसे और विभूति को ले जाने आये हैं। मिसिर के भेजे हुए आदमी के साथ महतो चला जाता है। तालाब से मछली पकड़ने की कीमत उसे पता थी वह जानता था कि आगे क्या होने वाला है। मिसिर महतो से विभूति के उन साथियों का नाम भी पूछते हैं जिसके साथ मिलकर विभूति ने इस काम को अंजाम दिया था। महतो के कुछ न बताने पर मिसिर ने सीधे अपना फरमान सुना दिया- “अच्छा महतो, हम तुमको कल तक मौका देते हैं। अच्छी तरह सोच लो। अगर नहीं बताए, तो भैंस को मेरे दरवाजे पर पहुंचा देना। फिर हम बाद में तुम्हारे घर-जमीन के बारे में सोचेंगे। एक बात याद रखना-यह पोखर का मामला है। इसे किसी कीमत पर छोडूंगा नहीं।”[24] महकू को यह उम्मीद नहीं थी कि मिसिर उससे इस तरह की बात करेंगे।

वह मिसिर के पिता के जमाने से मिसिर के यहाँ पर चरवाही कर रहा है। उस पर भी वह उसके बाप की उम्र का है। हमारे समाज में जमींदारी प्रथा किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के लिए एक अभिशाप की तरह थी। मजदूर के घर के लोग पुश्त-दर-पुश्त जमींदार के यहाँ काम करते थे। एक ने कर्ज लिया तो उसकी कई पीढ़ियाँ उसे चुकाने में चली जाती थी, फिर भी कर्ज खत्म होने का नाम नहीं लेता था। और उनकी कई पीढ़ियाँ जमींदारों की गुलामी करने पर मजबूर रहती थीं। रामशरण शर्मा के अनुसार- “स्वतंत्र किसानों की संख्या घटती जा रही थी और जमींदारियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। जमींदार एक ही परिवार में पुश्त-दर-पुश्त रहने लगे और इसमें काम करने वाले गुलाम भी पुश्त-दर-पुश्त उसके साथ रहने लगे।”[25] गाँव वालों के सामने महतो की इतनी बेईज्जती हुई कि उसका सिर शर्म से झुक गया। जिस भैंस को महतो इतने दिनों से पाल-पोस रहा था वह मिसिर के आदेश से वापस ले ली गई। ऊपर से घर-और जमीन से बेदखल होने का एक और डर महतो को सता रहा है। बेबश महतो सोच रहा है- “मालिक ने यह अच्छा नहीं किया है। महतो उस दिन की बात याद करता तो उसकी छाती में बड़ी जोर की हुक उठती।

बताओ भला ! मछली मारने के सुबहा पर भैंस खोलवा कर मंगवा दिया ? जीवन भर का किया धरा, पलक झकपते धो-पोंछकर बराबर कर दिए ।"[26]

महतो के जीवनभर की मेहनत के बदले मिसिर ने पूरे गाँव के सामने उसकी बेइज्जती की। महतो गुमसुम सा रहने लगा। वह गाँव के किसी भी आदमी से बात करने में कतराता रहता। अभी तालाब से मछली पकड़ने की बात चल ही रही थी कि उजागिर के साथ मिलकर विभूति ने मिसिर के घर से भैंस चोरी कर ली। सबका शक महतो पर ही गया। मिसिर ने महतो और विभूति के नाम पुलिस में रिपोर्ट भी दाखिल करा दिया। एक बार फिर पूरे गाँव के सामने महतो की पूछताछ शुरू हो गयी- "अरे साला, तेरा बेटा नकसलाइट है, इसीलिए तेरी मेहर का माथा इतना चढ़ा हुआ है।' उसने चनवा की माई को भद्दी सी गाली दी और सटाक-सटाक-दो बेंत जड़ दिए। महतो को लगा-अभी धरती फट जाती, तो वह उसमें समा जाता।.........बोल साला ! किसकी जमीन में रहता है ? तू मालिकाना हक बनाएगा ? दाखिल खारिज कराएगा ?......साले, एक महीने के भीतर जमीन छोड़ दे, नहीं तो मारते-मारते धोती खराब कर दूंगा। साले, तू रहिला के उस डकैतवा के बल पर भौंक रहा है ? ।"[27]

आज पूरे गाँव के सामने महतो को पुलिस की मार सहनी पड़ी। वह तो हमेशा से विभूति को समझाता रहा कि वह मालिक से बैर न ले। महतो को पता है कि वह मजदूर है उसका अपना कुछ नहीं है जो कुछ भी है सब मालिक का ही है कभी भी घर और जमीन से बेदखल कर देंगे तो वह कहाँ जाएगा। विभूति उसकी कहाँ सुनने वाला है। सारी विपत्ति तालाब की मछली पकड़ने से ही आई है। महतो को पुलिस की मार पड़ी, उसकी बेटी चनवा को घर से दूर भेजना पड़ा और विभूति की तो जिंदगी ही बदल गई वह गाँव छोड़कर नक्सल दल में शामिल हो गया।

इन सबके बावजूद उन पर अत्याचार यहीं नहीं समाप्त होता है। महतो के खिलाफ तरह-तरह की साजिशें मिसिर रच रहे हैं लेकिन गरीब महतो इन सब बातों से अनजान है। एक दिन रात को जब विभूति सबसे छुपकर अपने घर आता है, तो मिसिर ने पहले से ही उसके घर पर पुलिस तैनात कर रखी थी।

विभूति भी पकड़ लिया गया- “इतनी बात तो साफ़ है कि विभूतिया को अपने ही घर में घेर, पुलिस पकड़कर ले गई। पीछे से मुसुक बांधकर कमर में रस्सा लगा, राता-राती ही लेकर चली गई। तब जाकर लोगों को मुखिया की चाल समझ में आई है। उनकी दरोगा से कब कानों-कान बात हुई-इसकी भनक रजेसर लाल को भी नहीं थी।”[28] तालाब से मछली पकड़ने की बहुत बड़ी सजा महतो को मिलती है। उनका घर-जमीन, बेटा-बेटी सब उससे दूर हो जाते हैं।

खेतिहर मजदूर सिर्फ किसानों के खेत में काम करता है। उसका काम सिर्फ मेहनत करना ही है। फसल कितनी भी अच्छी हो जाए इससे उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता है। उसे अपने परिवार का पेट भरने को अन्न मिल जाए उसके लिए इतना ही बहुत है। ‘यह गाँव बिकाऊ है’ उपन्यास का अघोघ खेत में काम करते हुए किसान से पूछता है- “चचा, इस बार फसल बहुत अच्छी दिख रही है। बहुत मेहनत कर रहे हैं आप।”

“हाँ बेटा ! मेहनत तो कर रहे हैं। लेकिन फसल के अच्छे होने से हमारी जिन्दगी में कोई बदलाव नहीं आने वाला।”

क्यों चचा ?

यह फसल हमारा घर नहीं, बल्कि जिसका खेत है, उसका घर भरेगी। हमारा तो बस पेट भर जाये, इतना भी कम नहीं।”[29] किसान तो सिर्फ जमीन का मालिक होता है। देखा जाए तो फसल का असल हकदार तो खेतिहर को होना चाहिए, लेकिन ऐसा होता नहीं है। खेतिहर मजदूर के भाग्य में तो शोषित होना ही है। सूर्यनाथ सिंह के ‘चलती चाकी’ उपन्यास में भी निशांत खेत में काम करते मजदूर से पूछते हैं- “कितनी कमाई हो जाती है खेती से, अंदाजन ?”

“हामरा तो मजूर। खेत आछे ना। जोतदार मालिक का आछे। हामरा मजूर। काम करता, मजूरी से पेट भरता।”

निशांत फिर बोलते हैं “कितनी मजदूरी मिल जाती है दिन भर की ? दिहाड़ी पर करते हैं या महीने की तनख्वाह पर ?”

हामरा तो रोज काम करता। साल का मजूरी मिलता। चौदह मन अनाज।

बच्चों का पालन-पोषण कैसे होता है ?

ऊ भी काम करता। मालिक के घर में चरवाही हाय। गाय-गोरु को खिलाता-पिलाता, मालिक की सेवा करता हाय।”[30] किसान के खेत में काम करने की मजदूरी सिर्फ खेतिहर मजदूर को मिलती है, लेकिन काम उसका पूरा परिवार करता है। कभी किसान के खेत में काम करता है तो कभी उसके घर पर बेगारी करता है। खेती से उसका केवल पेट का संबंध है, जमीन से नहीं।

4.2 खेतिहर मजदूर जीवन : बेरोजगारी और पलायन

पूंजीवाद की नई नीतियां आने के कारण ग्रामीण क्षेत्र से खेतिहर मजदूरों का तेजी से पलायन हो रहा है। काम की तलाश में मजदूर शहर में भटकने को मजबूर हैं। शहरों में बढ़ती भीड़ को देखकर लगता है कि देश बहुत उन्नति कर रहा है, जबकि हकीकत कुछ और ही है। मजदूर काम की तलाश में शहर तो जाते हैं लेकिन उन्हें निराशा ही हाथ लगती है। खेतिहर मजदूर को वर्षभर काम नहीं मिल पाता, यही उनकी समस्या की मूल जड़ है। महाश्वेता देवी के अनुसार- “खेतिहर मजदूर का काम मौसमी होता है। अधिकांश स्थानों में खेत बोने और काटने का काम वर्ष में एक बार होता था। मजदूरों के पास कर्ज लेने के अलावा और कोई चारा नहीं था। लाखों लोग केवल कर्ज के बल पर अपनी गाड़ी चलाते थे। कर्ज के साथ-साथ उनकी जिन्दगी में अपमान ने भी प्रवेश किया।”[31]

सुनील चतुर्वेदी के ‘कालीचाट’ उपन्यास का हेमराज शहर में काम करने जाता है। जब वह शहर से लौटकर आता है तो लोगों को लगता है कि शहर में वह बहुत अच्छी जिन्दगी व्यतीत कर रहा है। हेमराज को पता है कि वह वहां कैसा जीवन व्यतीत कर रहा है। जब नारायण उससे उसकी पत्नी और

बच्चों को भी शहर ले जाने को कहता है तब वह नारायण को शहर की सच्चाई बताता है- “साथ ले जाऊं तो रखूँगा कहाँ ? पतरे की एक छोटी सी खोली है। उसमें हम तीन लोग रहते हैं। खोली भी शहर में नहीं बाहर गंदे नाले के किनारे बनी है।......बरसात में नाले का पानी खोली में घुस जाता है। गर्मी में तो हाल और भी बुरा है। खोली में जाओ तो बफाओ। बाहर जाओ तो बास के मारे जान निकल जाए। और मच्छर.......मच्छर इत्ते की सवेरे तक पूरा शरीर सुजा दे। ऐसी खोली का किराया हजार रूपये है। सवेरे जल्दी उठकर दस किलोमीटर साइकिल से फेकटरी जाता हूँ। महीने भर गधा हम्माली के बाद चार हजार मिलते हैं। किसी दिन काम पर नहीं जा पाओ तो उस दिन के पैसे कट जाते हैं। शहर में दिहाड़ी मजूर की कोई गत नहीं है दादा। अब यदि सबको ले जाऊं तो रहने के लिए हजार रूपए महीने की तो खोली ही लेनी पड़ेगी। फिर बचे तीन हजार में रोटी पानी, कपड़े लत्ते, दवा दारु। नहीं पूरा पड़ सकता दादा।”[32] हेमराज की बात सुनकर नारायण शहर की सच्चाई को समझ पाता है।

गाँव से मजदूर शहर जाते तो हैं, लेकिन उन्हें वहां पर भी सुकून का काम नहीं मिलता। उन्हें शहर में कितनी भी कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े, लेकिन वे गाँव वापस नहीं आना चाहते हैं क्योंकि शहर में उन्हें रोज काम तो मिल जाता है। शहर में मजदूरी करके वे अपना और अपने परिवार का पेट तो पाल सकते हैं। गाँव में तो रोज काम ही नहीं मिलता। सामान्यतः मजदूर गाँव से पलायन मजदूरी करने के लिए करता है। किंतु वह जब अपना गाँव छोड़ता है तो उसे अपनी पीढ़ियों की परंपरा और स्वयं अपनी भावनावों की बलि भी देनी पड़ती है।

शहर में वह मनुष्य न रहकर एक मशीन की भांति हो जाता है। जिसका कोई वजूद ही नहीं होता है। शिवाजी राय के अनुसार- “देश और समाज के निर्माण में सर्वाधिक योगदान करने वाले पलायित मजदूर मेट्रो शहरों में गंदे नालों के किनारे छोटी-छोटी झुग्गियों में बड़ी संख्या में रहते हैं जहाँ सांस लेना मुश्किल होता है। वहां स्वच्छ वातावरण के अभाव में टीबी और कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों का शिकार होते हैं। मेट्रो महानगरों में गगनचुंबी टावरों और बंगलों का अंबार लगा हुआ है। लाखों की संख्या में

मकान खाली है। बड़ी सड़क के किनारे फुटपाथ पर सोने के लिए लोगों को जगह कब्ज़ा करना पड़ता है।"[33]

हेमराज के मुंह से शहर के जीवन की सारी सच्चाई सुनने के बाद भी नारायण गाँव छोड़कर शहर जाना चाहता है। उसे पता है कि शहर में कितनी भी कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े वहां काम तो मिलेगा किंतु गाँव में तो बेरोजगार ही रहना पड़ेगा। उसकी पत्नी कमला मन से तो नहीं चाहती कि नारायण शहर मजदूरी करने जाए, लेकिन परिस्थिति के आगे वह भी हार गई है- "देहरी में खड़ी कमला चुपचाप नारायण को सामान समेटते देख रही थी। उसका मन हो रहा था वह नारायण से कहे मत जाओ। यहीं गाँव में ही मेहनत मजूरी कर के जिंदगी काट लेंगे। किसी तरह भी दो रोटी का जुगाड़ तो जम ही जाएगा, लेकिन वह भी बदलते समय को देख रही थी। वह समझ रही थी कि अब सब कुछ आसान नहीं रह गया है। पेट भरना है तो गाँव छोड़ना ही पड़ेगा।"[34]

गाँव से जो खेतिहर मजदूर शहर जाते हैं उनमें से अधिकांश अकुशल एवं अस्थाई मजदूर होते हैं। ये उद्योग जगत के लिए बहुत फायदेमंद होते हैं। इनसे कम वेतन में अधिक काम लिया जाता है। शहर की कंपनियां और बंगले की चमक सिर्फ देखने में ही अच्छी होती हैं। मजदूर उन्हें सिर्फ़ देख ही सकता है असल में उसका क्या सुख है ये उसे नहीं पता। वे सिर्फ पूंजीपतियों के लिए अपना श्रम खपा सकते हैं। शिवाजी राय के अनुसार- "देश में विकास का जो ढांचा दिखाई दे रहा है उसके लिए श्रम के लिहाज से खून पसीना बहाने में सबसे ज्यादा योगदान इन पलायित मजदूरों का है जो देश बनाने का जज्बा लेकर मेट्रो शहरों के गली कूचों में भटकते हुए आपको मिल जाएंगे। चाहे बात अवस्थापना विकास की हो, रेलवे दूरसंचार की हो या आयात निर्यात आत्मनिर्भरता की।"[35] सच तो यह है कि खेतिहर मजदूर गाँव में काम न मिलने पर शहर जाते हैं किंतु वहां भी उनकी जिंदगी नरक के समान ही होती है।

हेमराज गाँव के युवाओं के सामने शहर के उस पक्ष को ही रखता है जो लुभावना होता है। जब नारायण भी उसके साथ शहर जाने की बात करता है तब वह अपने वास्तविक जीवन के बारे में बताता है।

हेमराज नारायण से कहता है- “मैं लड़कों से झूठ नहीं कह रहा था दादा। शहर की वो भी सच्चाई है पर वो हमारे लिए नहीं है। हमारा काम तो बस इतना है कि मेहनत मजूरी करके पैसे वालों के लिए स्वर्ग तैयार करना। हम उस स्वर्ग में घुस नहीं सकते। वो लोग हमें एक मिनिट बर्दाश्त नहीं कर सकते। काम होते ही हड़का कर भगा देते हैं। जैसे हम मनख नहीं कुत्ता-बिल्ली हों। हमारी किस्मत तो बस इतनी है कि अपनी मेहनत से पैसे वालों के लिए स्वर्ग तैयार करना और खुद उनके बनाए नर्क में सड़ना।”[36] खेत-मजदूर जब अपना घर गांव छोड़कर शहर की तरफ पलायन करता है, तो उसके दिमाग में शहर के प्रति तमाम अच्छाइयां रहती हैं। किंतु जब वह शहर का जीवन जीने लगता है, तब जाकर वहां की सच्चाइयों से रूबरू होता है।

शहर में मजदूर का जीवन बहुत ही पीड़ादायक होता है। वह एक तरह से शहर के नारकीय जीवन को जीता है। जहां की मलिन बस्तियों में एक ही साथ कई मजदूर रहते हैं। वहां वे अनेक बीमारियों का शिकार होते हैं। पैसे के अभाव में न तो उन्हें अच्छा भोजन मिल पाता है, न ही उनका स्वास्थ्य अच्छा रह जाता है। मजदूरों को शहर में कम मजदूरी में अधिक काम करना पड़ता है। वेतन युक्त काम के साथ-साथ उनसे बेगार भी करवायी जाती है। काम से निकाले जाने के डर से मजदूर बेगार करने को मजबूर होते हैं। उनसे क्षमता से अधिक काम लिया जाता है। क्षमता से अधिक काम का बोझ करने में जब वे असमर्थ हो जाते हैं, तो मजबूरन वे नशीली दवाओं का सेवन करने लगते हैं। जिससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। समय से पहले ही बुढ़ापा और कैंसर जैसी भयावह बीमारी का शिकार होने लगते हैं। धीरेन्द्र झा के अनुसार- “पलायन की पीड़ा इतनी भयावह है कि जवान होने से पहले नाबालिग बच्चे कमाने के लिए बाहर जाने को मजबूर हो रहे हैं। मजदूरों की बस्तियों में बूढ़ों, महिलाओं व बच्चों के सिवा किसी के पदचिह्न नहीं मिलते। इसने कई तरह के पारिवारिक सांस्कृतिक विखंडन के बीज बोए हैं। स्वास्थ्य सेवाओं की खस्ता हालत और तेजी से होते निजीकरण ने इनकी जीवन-स्थिति को और नारकीय बना दिया है। गाँव से बाहर जाकर मजदूर पैसे तो जरूर लाते हैं, इसके साथ कई बीमारियों का भी आयात बड़े पैमाने पर

कर रहे हैं। इन इलाकों में एड्स जैसी बीमारी का बढ़ता प्रकोप विस्फोटक रूप ग्रहण कर रहा है और नशा सेवन की प्रवृत्ति में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। कालाजार, मलेरिया, डेंगू, मस्तिष्क ज्वर जैसी बीमारियों के बढ़ते प्रकोप से बचाने के लिए इन मजदूर बस्तियों-मजदूर परिवारों के लिए स्वास्थ्य सुविधाएँ नदारद हैं।"[37]

नारायण काम की तलाश में शहर तो गया लेकिन बहुत तलाशने के बाद उसे चौकीदार का काम मिला था। वह भी तीन हजार रुपये की पगार पर। वह रात-भर चौकीदार का काम करता और दिन में उसे बेगार करनी पड़ती। दिन में उसे गोदाम में आने-जाने वाली गाड़ियों के लिए गेट खोलना और दवाइयों के भारी-भारी बक्से उतरवाने का काम करना पड़ता जिसकी उसे कोई पगार नहीं मिलती है। इतना सब करने के बाद भी वह छुट्टी मांगे तो सक्सेना छुट्टी भी नहीं देते उल्टा फटकार लगा देते हैं- "तुम लोगों की यही प्रोब्लम है, नौकरी मिलते ही गाँव जाने के लिए छुट्टी चाहिए। छुट्टी नहीं मिलेगी। जाना है तो हमेशा के लिए जाओ।"[38]

नारायण शहर जाता है मजदूरी करने के लिए लेकिन मेहनत करने के साथ-साथ उसे और भी लत लग जाती है। काम के अत्यधिक बोझ के कारण उसे नशे की आदत लग जाती है। शहर में उसे रात में चौकीदार का काम करना पड़ता है। नींद से बचने के लिए वह बीड़ी पीना शुरू कर देता है। दिन में बेगार करना पड़ता है। रात-भर जगने से दिन में वह काम करने लायक नहीं रह जाता है। एक बार दिन में गोदाम में गाड़ी आई उसे सामान उतरवाने के लिए कहा जाता है। लेकिन वह इतना थक चुका था कि उसकी हिम्मत नहीं हो पाती कि वह जाए और सामान उतरवाये।

एक मजदूर का जीवन कैसा होता है यह नारायण ही जानता है। 'नांतेस' के एक चिकित्सक ने 1825 में मजदूर के जीवन का यर्थाथ इन पंक्तियों में व्यक्त किया है- "उसके लिए जीने का मतलब है नहीं मरना। रोटी का टुकड़ा और शराब की बोतल से ज्यादा वह कुछ नहीं मांगता, किसी चीज की उम्मीद नहीं करता। रोटी उसके और उसके परिवार के पोषण के लिए शराब, क्षण भर के लिए उसकी पीड़ा से राहत

के लिए जरूरी समझी जाती है ।.....चौदह घंटों तक पसीना बहाने के बाद वह घर लौटकर कपड़े नहीं बदलता क्योंकि उसके पास बदलने के लिए कपड़े नहीं होते हैं ।"[39] रातभर जगने और उचित भोजन और निवास के अभाव में मजदूर इस लायक नहीं रह जाते कि वे बेगार भी कर सके। लेकिन काम छूटने के डर से वे किसी भी तरह काम करने पर मजबूर होते हैं। यही हालत नारायण की भी है वह किसी तरह से सामान उतरवाकर खोली में पंहुचता है। उसकी हालत देखकर जलाराम ने उसे एक गोली खाने को दी। गोली खाते ही नारायण के शरीर की सारी थकान दूर हो गई। नारायण अब रोज उस गोली का सेवन करने लगा। उसे यह नहीं पता है कि यह किस चीज की दवा है। जलाराम ने उसे डिब्बी देते हुए सिर्फ इतना कहा था कि- "रख ले.......हम गरीबों के दुःख-दर्द की रामबाण है यह काली गोली। रोज सुबह एक गटक लो और दिन भर तन तनाट काम करो ।"[40] जब दवा खत्म हो जाती है तो वह एक दवा की दुकान पर जाता है, जहाँ पर उसे पता चलता है कि यह दवा नहीं अफीम है। तब जलाराम उसे समझाते हुए कहता है- "दवाई की दुकान वाले अफीम नहीं रखते नारायण भाई। मैं अपने लिए लेने जाऊंगा तो तुम्हारे लिए भी ला दूंगा ।"[41]

हेमराज के साथ नारायण काम ढूढ़ने शहर जाता है। हेमराज और नारायण को देखकर गाँव के दूसरे लोग भी शहर जाना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें शहर की सच्चाई के बारे में कुछ नहीं पता है। नारायण और हेमराज गाँव से किसी भी मजदूर को शहर नहीं ले जाना चाहते हैं। युनुस चाहता है कि वह अपने बड़े बेटे को शहर भेज दे ताकि वह वहां जाकर कुछ काम कर सके जिससे उसकी मदद हो सके। नारायण युनुस को समझाते हुए कहता है- "युनुस भाई, शहर में छोरा हम्माली करते-करते जवान होने से पहले ही बूढ़ा हो जाएगा ।"[42] गाँव से कोई भी खेतिहर मजदूर अपनी खुशी से शहर नहीं जाना चाहता है लेकिन जब गाँव में गुजारा नहीं हो पाता है तब वह शहर जाता है। रणजीत दासगुप्त के शब्दों में- "ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पर्याप्त रोजगार पाने में असमर्थ तबाह हो चुके दस्तकार (हस्तशिल्पी), मजदूर जिन्हें

पर्याप्त रोजगार नहीं उपलब्ध है .....खेतिहर अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों से अस्त-व्यस्त हो चुके खेतिहर और अकुशल व्यक्ति जूट मीलों में कार्यरत कामगारों का बहुमत थे।"[43]

सूर्यनाथ सिंह के 'चलती चाकी' उपन्यास के निशांत खेत में काम कर रहे मजदूर से पूछते हैं- "आप जैसे कितने लोग इस तरह गुजर-बसर करते हैं ?" काफी हाय। मालिक तो कम आछे। मजूर काफी आछे। बहोत लोग बाहर देस गया।"[44] हमारे देश में दिन-प्रतिदिन मजदूरों की संख्या बढ़ती ही जा रही है, लेकिन उनके पास काम नहीं है। मजदूरी की तलाश में उन्हें दर-ब-दर भटकना पड़ता है। गाँव में भी उन्हें प्रतिदिन काम नहीं मिलता और शहर जाने पर उन्हें कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, फिर भी उन्हें अपना पेट भरने के लिए शहर का रास्ता ही देखना पड़ता है।

राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास का सीताराम शहर जाकर फैक्ट्री में काम करता है। एक दिन डूमणू को कहीं से पता चलता है कि सरकार ने प्लास्टिक के थैलों पर रोक लगा दी है। डूमणू जिस कारखाने में काम करता था वह प्लास्टिक की फैक्ट्री अब बंद हो जाएगी। डूमणू चिंता व्यक्त करते हुए कहता है कि फैक्ट्री बंद हो गई तो हमारी नौकरी भी चली जायेगी। सीताराम तो मन ही मन खुश होता है क्योंकि उसके लिए यहाँ का जीवन बड़ा ही कष्टप्रद है। लेकिन डूमणू चिंतित होकर सीताराम से कहता है- "भंगड़ा, तू बातें करता हिया सौदाईयों वाली। संतू गलत तो न बोल रया है, जे गरचे फैक्ट्री बंद हो गई तो लगी लगाई कार छूटेगी कि नई। चार पैसे आने की आमदनी बंद होगी कि नई। जरा बोल तो। बड्डा आया तू बात-बात में मान धरम का लोटा चकवाने को त्यार बैठा हिया। भाऊआ, जे ईक बार को लगी लगाई कार छूटी, तो उसके बाद दूसरा काम इतना आसानी से मिलने वाला हुआ भला ! इधर एक फैक्ट्री से छूटे मजदूरों को दूसरी वाले नई रखते। गाँव जाकर स्वाह काम न मिलेगा।"[45] डूमणू सोचता है कि यदि फैक्ट्री बंद हो गई तो उसकी आमदनी भी बंद हो जाएगी फिर वह अपना और अपने परिवार का पेट कैसे पालेगा। गाँव में तो कोई काम मिलने से रहा। वह सोचता है कि सरकार को क्या जरूरत है। फैक्ट्री बंद

करने की, हमसे हमारा काम छीनने की। जब सरकार हमें काम दे नहीं सकती तो उसे हमसे काम छीनने का भी कोई हक़ नहीं है।

एम.एम.चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास का फतह जो काम की तलाश में शहर जाता है और वहीं का होकर रह जाता है। समय का फेर 23 साल बाद वह फैक्ट्री भी बंद हो गई जिसमें फतह काम करता था। जिस तरह वह मजबूर होकर काम करने के लिए शहर जाता है उसी तरह मजबूरी में उसे शहर छोड़कर गाँव आना पड़ता है। वह अब गाँव में ही मजदूरी का काम ढूढने की कोशिश करता है।

वह कहता है कि बल्ली भाई मैं शहर जाने से पहले भी मजदूर था अब भी मजदूर ही हूँ। बल्ली उसकी बातों का उत्तर देते हुए कहता है- "हाँ, फतह ! तू ठीक कह रहा है। वो ज़माना ही दूसरा था, जब तुम इस गाँव से बाहर कमाने गए थे। उस समय नेहरु मॉडल की आंधी थी। तुम्हारे जैसे न जाने कितने लोगों का गाँव छुड़वा दिया। वरना तुम 23 साल मजदूरी न कर पाते।"[46] फतह मजबूरी में शहर से वापस गाँव तो आ जाता है लेकिन उसके पास करने को कोई काम नहीं रहता है। वह और उसकी पत्नी इसी चिंता में लगे हैं कि किस तरह से जीवनयापन होगा। फतह गाँव में कुछ दिन ही रहने के लिए आया है। जिस मिल में वह काम करता था उसमें उसके पैसे बचे हुए हैं, वह सोचता है कि मिल से पैसे मिलते ही वह शहर वापस चला जाएगा। जब तक फतह गाँव में है तब तक वह और उसकी पत्नी किसी के घर जाकर मजदूरी करने की सोचते हैं। किसी तरह से फतह को बल्ली के घर काम करने को मिल जाता है। फतह अपनी पत्नी से कहता- "सुनो ! तुम्हें बल्ली के घर जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी, मुझे बल्ली के यहाँ काम मिल गया है। बल्ली ने कहा है, शहर से वापस आकर बटाई पर एक भैंस दे दूंगा। तुम उसके पीछे लगी रहना, खूब टहल। बाकी ये मुसीबत के दिन ज्यादा नहीं है। जल्द ही मिल से पैसा मिल जाएगा और हम परिवार सहित शहर में चले जायेंगे।"[47] खेतिहर मजदूर के जीवन में हमेशा समस्याएं रहती हैं अपनी इन्हीं समस्याओं से निजात पाने के लिए ही वह कभी गाँव से शहर से पलायन करता है तो कभी शहर से

थक-हारकर या मजबूरी में अपने गाँव वापस आता है। लेकिन उसकी समस्याएं वैसी ही बनी रहती हैं। उन्हीं समस्याओं के साथ उसे जीना पड़ता है।

खेती में कम मुनाफे एवं शहरों की तरफ बढ़ते पलायन के कारण ही खेती-किसानी का काम दिन-प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। स्थिति यह उत्पन्न हो रही है कि किसानों को खेतों में काम करने के लिए मजदूर मिलना मुश्किल हो रहा है। यदि हम ग्रामीण क्षेत्र के मजदूरों की बात करें तो उनको आज भी खेत में काम करने के लिए 60 से 70 रुपए प्रतिदिन की मजदूरी दी जाती है। आज के इस महंगाई के दौर में 60 से 70 रूपए में पूरे परिवार का जीवनयापन करना बहुत ही मुश्किल काम है। ऐसे में उनके लिए शहर जाकर प्रतिदिन काम करना ज्यादा सुविधाजनक होता है। धीरेन्द्र झा के अनुसार- "विश्व व्यापार नियंत्रित भारतीय कृषि नीति ने जिस संकट को पैदा किया है, उसकी सबसे ज्यादा मार गाँव के खेत मजदूरों पर पड़ रही है। कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में बेतहाशा कमी आई है। रोजगार के लिए मजदूरों का पलायन बड़े पैमाने पर हो रहा है। विकसित कृषि इलाकों तथा गैर कृषि क्षेत्रों में अमानवीय जीवन में उन्हें रोजगार तो मिल जा रहा है, लेकिन मजदूरी के दर में गिरावट आ रही है।"[48]

मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास का कुलराखन अपने पिता बलेसर को कृषि कार्य में आने वाली कठिनाइयों के बारे में बताता है- "पिता जी कृषि-कार्य के लिए अब पहले जैसे मजदूर नहीं मिलते। खेती की अपेक्षा अन्य कार्यों में वे चले जाते हैं। अब खेती की सीमित आय से उनकी पोसाई (गुजर-बसर) सम्भव नहीं।"[49] दिन-प्रतिदिन गाँव में खेत मजदूरों की संख्या निरंतर घटती जा रही है। एक ऐसा भी समय था जब खेती के काम के लिए आसानी से मजदूर मिल जाते थे।

खेतिहर मजदूर के पास या तो जमीन होती ही नहीं है या होती है तो बहुत कम। मजदूर गाँव में ही अपने परिवार के साथ सब्जी का व्यवसाय, पशुपालन आदि करके अपना जीवनयापन कर लेते थे, किंतु अब परिस्थितियां बदल गई हैं। गाँव में खेतिहर मजदूर के पास पर्याप्त काम नहीं है जिसके कारण उन्हें शहर की ओर पलायन करना पड़ता है। इस सब की वजह से खेतिहर मजदूर सरकार द्वारा मजदूरों के लिए

चलाई गई 'मनरेगा' में कृषि-कार्य से ज्यादा रुचि लेते हैं क्योंकि उसमें 100 दिन काम मिलने की गारंटी तो रहती है। खेतिहर-मजदूरों के पलायन के कारण कृषि-संकट उत्पन्न हो रहा है क्योंकि बिना खेतिहर-मजदूर के सहयोग के किसानों के लिए खेती करना कठिन काम है।

मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास का मनराखन बलेसर को समझाते हुए कहता है- "गाँवों के खेत-मजदूर जिस तेजी से शहर की ओर भाग रहे हैं कि खेती में सहयोग के लिए वे रहेंगे ही नहीं......। हमारे मित्र बताते हैं कि कई गाँवों में मजदूरों के अभाव में अनेक किसानों के खेत परती रह रहे हैं।"[50] खेतिहर मजदूरों के पलायन का मुख्य कारण गाँव में काम का अभाव होना मुख्य है। खेती का काम मौसम के अनुसार होता है। इसलिए मजदूरों को काम तभी मिल पाता है जब खेत में काम हो। ज्यादातर मजदूरों को साल में चार महीने से ज्यादा खेती में काम नहीं मिल पाता है।

मजदूरों को काम देने के उद्देश्य से सरकार द्वारा 'मनरेगा'योजना चलाई गई किन्तु उसमें भी किसी गाँव में मजदूरों को 100 दिन का काम नहीं दिया जाता है। काम तो किसी तरह से मिल भी जाए, किन्तु उन्हें मजदूरी मिलने में दो महीने से अधिक का समय लग जाता है। जाहिर सी बात है कि जिस परिवार का गुजारा प्रतिदिन की मजदूरी से होता हो उसे समय पर मजदूरी न मिले तो उसकी जीविका कैसे चलेगी। इसी कारण से खेतिहर मजदूरों की स्थिति अत्यन्त दयनीय बनी हुई है।

इक्कीसवीं सदी में महिलाएं अपने परिवार के भरण-पोषण करने में अपनी महत्ती भूमिका निभाती हैं। गाँव में काम के अभाव में उन्हें मजबूरीवश शहर की पलायन करना पड़ता है। शहरों में महिलाओं का हर तरह से शोषण होता है। शहर की कंपनियों और ईट-भट्ठों आदि में कार्यरत कामगर महिलाओं का जीवन बहुत ही दर्द भरा होता है। आये दिन इनके साथ मिल मालिकों एवं ईट-भट्ठों आदि पर कार्यरत अधिकारियों द्वारा महिलाओं के शारीरिक शोषण किए जाने की घटनाएं सामने आती हैं। किंतु पेट पालने के लिए ये अपना घर-बार छोड़कर शहर में यातनाएं सहने के लिए मजबूर हैं। हमारे देश में सरकारी कागजों में महिलाओं को तमाम तरह के अधिकार देने की बातें कही गई हैं, किंतु ऐसा कोई क़ानून अभी तक नहीं

लागू हुआ है जो लैंगिक असमानता को मिटा पाया हो। महिलाएं शारीरिक या मानसिक रूप से कितना भी परिश्रम कर लें किंतु उन्हें पुरुषों के बराबर पारिश्रमिक नहीं मिलता है- "जो संगठन या व्यक्ति इसी व्यवस्था के भीतर नारी-मुक्ति का स्वप्न देखते हैं वो पूंजीवाद के उन कारकों को नहीं देख पाते जो लैंगिक असमानता और स्त्रियों की गुलामी को बल देते हैं। वे कभी भी मजबूर महिलाओं के साथ कार्यस्थलों पर हुए यौन-उत्पीड़न पर आवाज नहीं उठाते। महिला मजदूरों को पुरुषों के बराबर काम करने पर भी पुरुषों से कम मजदूरी मिलती है और उसे सबसे निचली कोटि की उजरती गुलाम के रूप में खटाया जाता है।"[51] खेतिहर मजदूर की महिलाएं पुरुषों के काम में बराबर हाथ बंटाती हैं किन्तु इसके बदले न तो उन्हें पुरुषों के बराबर मजदूरी मिलती है न ही सम्मान। गाँव में प्रतिदिन महिलाओं को भी काम नहीं मिल पाता इससे उन्हें परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इसलिए मजबूरन उन्हें शहर का रास्ता देखना पड़ता है। शहर में भी उनका जीवन कम दुखदायी नहीं होता है लेकिन उनकी मजबूरी के सामने उन्हें अपना दुःख नहीं दिखाई देता है। जिन समस्याओं से बचने के लिए मजदूर गाँव से शहर जाता है वही समस्याएं उन्हें शहर में भी मिलती हैं किन्तु उनका रूप बदल जाता है। शहर में उनके सामने सबसे पहले तो निवास की समस्या उत्पन्न होती है। गाँव में उनके पास अपना घर होता है किन्तु शहर में उनके रहने की उचित व्यवस्था नहीं होती है। उन्हें झुग्गी झोपड़ियों में अपना निवास स्थान बनाना पड़ता है। शहर में मजदूरों को मलिन बस्तियों में रहना पड़ता है। उन्हें इतनी मजदूरी तो मिलती नहीं कि वे वहां अच्छी तरह से रह सकें और खा सकें। रुखा-सूखा खाकर उन्हें शहर की फैक्ट्रियों में काम करना पड़ता है, इसलिए वे जल्द ही किसी न किसी रोग के शिकार हो जाते हैं।

4.3 भूमि समस्या से जूझता खेतिहर मजदूर वर्ग

भारत में भूमि संपत्ति का विवरण हमें सिंधु सभ्यता से ही देखने को मिलता है। किंतु तब व्यवस्थित रूप से कृषि करने का साक्ष्य कहीं नहीं मिलता। आर्यों के आगमन के पश्चात ही व्यवस्थित रूप से खेती और पशुपालन करने के साक्ष्य मिलते हैं। इरफान हबीब के अनुसार- "घोड़े को पालतू बनाकर आर्यों ने

तीव्र गति प्राप्त कर ली थी। वे पशुपालन करते थे। गाय और मवेशी उनकी नजरों में धन का मुख्य रूप थे। वे खेती और चरवाही साथ-साथ करते थे और हल का उपयोग करना जानते थे। फिर भी आरंभ में वे केवल जौ और कुछ अन्य अनाज उपजाते थे।"[52]

आर्य सभ्यता के आरंभिक दौर में भूमि का खेतों के रूप में विभाजन देखने को मिलता है। जिस पर स्वयं खेतों के मालिक काम करते थे जिन्हें तब किसान कहा जाता था। उत्तर वैदिक काल जिन्हें आर्यो के विस्तार का दौर कहा जाता है। उत्तर वैदिक काल में ही जंगलों को काटकर कृषि के लिए उपयोगी बनाने का कार्य शुरू हो गया और चावल आदि की खेती प्रारंभ हो गई। तभी से अत्यधिक भूमि के मालिक को धनवान माना जाने लगा और वही भूमि के मालिक के पास ऐसे अधिकार आ गए जो अपने अंतर्गत खेतिहर मजदूरों को रख सकते थे जिनसे वे खेती एवं मवेशी आदि पालने का काम करवाते थे। तभी से हमें यह देखने को मिलता है कि भूमिहीनता खेतिहर मजदूरों के जन्म का कारण है। इरफान हबीब के अनुसार- "पहली बार खेतों को धन सूचक के रूप में गिना जाने लगा। भारी हल होने के कारण खेती निश्चित तौर पर उन लोगों के हाथों में रही होगी जिनके पास अनेक मवेशी और कृषिदास होते होंगे। कीथ ने सुझाव दिया है कि- "अपने खेतों पर काम करने वाले रियायों की जगह अपने खेतों में कृषिदासों से काम कराने वाले जमीन-मालिक ले रहे थे।"[53] खेतिहर मजदूरों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या भूमि की है। उनके पास खेती करने के लिए पर्याप्त जमीन ही नहीं होती है जिस पर अन्न उपजा कर वह अपना और अपने परिवार का पेट पाल सके। शायद इसी कारण से उन्हें विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। भारत में भूमि के बड़े भू-भाग पर भूस्वामियों का ही कब्ज़ा है। वे स्वयं खेती न करके खेतिहर मजदूरों से खेती करवाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भूमि सुधार के जो भी कदम उठाये गए उसके परिणाम आशाजनक नहीं रहे हैं। सरकार या तो उन्हें लागू नहीं कर पाई या यों कहें कि बड़े-बड़े भूस्वामियों ने उन्हें लागू ही नहीं होने दिया। ये नीतियां सिर्फ सरकारी कागजों तक ही सिमट कर रह गई। पूरनचन्द्र जोशी के अनुसार- "स्वतंत्रता से अब तक, भूमि सुधार के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं जिनमें जमींदारी विनाश करके

बटाईदारों को भूस्वामित्व अधिकार देने, हदबंदी और अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरण सरकारी और भूदान जमीन का वितरण आदि शामिल हैं। हालांकि, यह सभी कदम सदेच्छा से उठाए गए थे, लेकिन इनके परिणाम आशानुरूप नहीं रहे।"[54]

भूमि व्यवस्था के तहत सरकार द्वारा यह नीति लागू की गई कि खेतिहर मजदूर उन्हें कहा जाएगा जिनका जीविकोपार्जन दूसरों की भूमि पर काम करना है। इसके अतिरिक्त जिस व्यक्ति के पास 0-1 हे. तक भूमि होगी उन्हें भी खेतिहर मजदूर की श्रेणी में रखा जाएगा। भागवत प्रसाद के अनुसार- "उ.प्र.शासनादेश सं.244 (1-4-(1)72 राजस्व 1,7 दिसम्बर 1994 के अनुसार खेतिहर मजदूर उसे माना जाएगा जिसके जीवन निर्वाह का मुख्य साधन दूसरों के खेतों में मजदूरी करना है। इसके अलावा ऐसा व्यक्ति जिनके पास 0-1 हेक्टेयर या इससे कम जमीन है उसे भी भूमिहीन माना जाएगा।"[55] जिन खेतिहर मजदूरों के पास खुद की जमीन होती है उसकी मात्रा इतनी कम होती है की उससे उनका गुजारा होना मुश्किल होता है। इन्हें अपनी जीविका चलाने के लिए मजदूरी ही करनी पड़ती है। कृषि हेतु पर्याप्त जमीन न होने के कारण ही सीमांत किसान कृषि से दूर होते जा रहे हैं। प्रधान हरिशंकर प्रसाद के अनुसार- "भारतीय परिवेश में खेत मजदूरों के स्वरोजगार का मतलब अपनी जमीन पर खेती होता है, इसलिए खेत मजदूरों के बीच स्वरोजगार के कम होने का साफ़ मतलब है कि अर्द्धसर्वहारा वर्ग के हाथों से जमीन धीरे-धीरे निकलती जा रही है। 1961 -71 के बीच ग्रामीण आबादी में बढ़ोत्तरी की तुलना में खेत मजदूरों की संख्या में बढ़ोत्तरी भी इसी परिस्थिति की ओर इशारा करती है।"[56]

खेत मजदूरों की समस्याएं इतनी ज्यादा होती हैं कि नाम मात्र की भूमि से ये उन्हें हल नहीं कर पाते हैं। समस्याओं से मजबूर होकर ही इन्हें महाजन और बैंक से कर्ज लेना पड़ता है। एक बार कर्ज का सिलसिला शुरू होने के बाद कभी खत्म नहीं होता है बढ़ता ही जाता है। ऋण को चुकाने के लिए उसे अपनी जमीन बेचनी पड़ती है और वह पूर्ण रूप से खेतिहर मजदूर बन जाता है। इसी कारण से भारत में खेतिहर मजदूरों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। खेतिहर मजदूरों की सभी समस्याओं का

मूल कारण भूमि की समस्या है। प्रधान हरिशंकर प्रसाद ने 'खेतिहर समाज' पुस्तक में लिखा है- "लगभग सारे के सारे अर्द्धसर्वहारा परिवार साधन की कमी से ग्रस्त रहते हैं। उनकी आमदनी अपनी न्यूनतम जरूरतों के लिए भी पूरी नहीं पड़ती। इस तरह उन्हें गाँव के धनी लोगों से कर्ज लेने पर मजबूर होना पड़ता है। नगद और उपज के रूप में भी। कर्ज देने वालों में सबसे बड़ी संख्या बड़े भूस्वामी वर्ग की होती है।.......लेकिन बड़ा भूस्वामी वर्ग लंबे समय के बाद भी पूरे भुगतान पर जोर नहीं देता। वह अक्सर, कर्जदारों को इस बात के लिए मजबूर करता है कि वे अपनी संपत्ति उनके नाम लिख दें।"[57] खेत मजदूर का न्यूनतम खर्च भी उनकी आमदनी से अधिक ही होता है इसीलिए उन पर कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है।

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में युनुस जो पेशे से खेतिहर मजदूर ही है। उसके पास जमीन तो है, लेकिन इतनी नहीं कि उससे उसके परिवार का गुजर-बसर हो सके। किसी भी काम को करने के लिए उसे मजदूरी का सहारा ही लेना पड़ता है। उसके पास जमीन का एक छोटा सा भाग है जिस पर उसे कुंआ खुदवाना है उसके लिए वह सड़क बनने का इंतजार कर रहा है जिससे उसे मजदूरी मिल सके- "यूनुस अपने ही तरीके से सोच रहा था। सड़क का काम खुलेगा तो दो एक महीने गाँव में ही मजूरी मिल जायेगी। अगर दो महीने सड़क का काम चल गया तो हो सकता है कि कूंए में टोटे लगवाने के लिए बैंक से लोन निकलवाने की जरूरत ही नहीं पड़े। फिर भी पहले हफ़्ते की मजूरी मिलते ही दीवानजी को दो सौ रूपये देकर नक़ल तो निकलवा ही लेनी है।"[58] यूनुस की सभी समस्याओं का मूल कारण उसके पास जमीन की कमी ही है। इसी कारण उसे छोटे से छोटे काम के लिए कर्ज का सहारा ही लेना पड़ता है। मजदूरों को अक्सर किसी बड़े काम के लिए कर्ज की जरूरत पड़ती है। भूस्वामी और महाजन मजदूरों को कर्ज देते रहते हैं जब तक उसकी संपूर्ण जायजाद की कीमत न पूरी हो जाए। उनके द्वारा लिए गए कर्ज पर सूद की दर बहुत ज्यादा होती है। इसलिए मूल चुकाने की बात ही नहीं ब्याज चुकाना भी उनके सामर्थ्य से बाहर की बात होती है। अक्सर भूस्वामी और महाजन मजदूरों के पास की संपत्ति उन्हें बेचने पर मजबूर

करते हैं। इसके बदले वे मजदूरों की पूरी कर्ज की राशि और ब्याज को भी माफ़ नहीं करते कुछ न कुछ शेष बचा ही लेते हैं। इस कर्ज की राशि का इस्तेमाल वे मजदूरों को बंधुआ बनाने में करते हैं।

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में साहिबु का एक पैर भीमा बा का बेगार करने में बैलगाड़ी के नीचे आ गया। भीमा बा साहिबु की दवा कराने के बदले उसकी जमीन हड़प लेते हैं और साहिबु और उसकी पत्नी रेशमी को अपने घर मजदूरी पर रख लेते हैं। साहिबु रेशमी को खेत में काम करते देखता है तो सोचता है- "मैंने क्या सुख दिया इस बेचारी को। पहनने-ओढ़ने का कितना शौक था इसको। लेकिन मैंने कभी इसकी पसंद का एक भी कपड़ा लाकर नहीं दिया। पर इसने कभी किसी बात का उलाहना नहीं दिया। आज मेरे पास मेरा खेत होता तो क्या मैं इसको गेंती चलाने देता ? कैसे बड़े-बड़े छाले पड़ गए हैं हाथ में, कितनी मेहनत करनी पड़ती है पर कभी मुंह पर सल नहीं आने देती।"[59] स्वतंत्रता के पश्चात देश में भूमि सुधार किया गया। हमारे देश में भूमि सीमित मात्रा में है किन्तु उसकी जरूरत ज्यादा लोगों को है इसलिए सरकार द्वारा यह कदम उठाया गया कि समाज के हर व्यक्ति के पास सीमित मात्रा में भूमि हो। अतिरिक्त भूमि का इस्तेमाल अन्य जरूरतमंद किसानों एवं भूमिहीन को देने में किया जा सके। किन्तु आज भी भूमिहीन मजदूरी करने पर ही मजबूर हैं। जिनके पास भूमि है वह इतनी कम है कि उन्हें दूसरों की भूमि पर काम करना पड़ता है। मैत्रेयी कृष्णराज के अनुसार-"किसानों की राष्ट्रीय नीति का पहला और सबसे जरूरी काम है भूमि सुधार जिसमें काश्तकारी क़ानून, भूमि को पट्टे पर देना और जोतों की चकबंदी जैसे मुद्दे भी शामिल हों। जहाँ तक संभव हो सके भूमिहीन श्रमिक परिवारों को बंजर भूमि या सीलिंग के बाद बची अतिरिक्त भूमि में से कम से कम एक एकड़ जमीन दी जाए।"[60]

पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' उपन्यास का रामप्रसाद ऐसा किसान है जो कहने को तो किसान है लेकिन काम से मजदूर है। उसे अपना गुजर-बसर मजदूरी करके ही करना पड़ता है- "दो एकड़ जमीन में परिवार का गुजरा कैसे होता था, यह रामप्रसाद को ही पता था।........रामप्रसाद खुद भी दूसरों के खेतों में कुछ काम करके थोड़ा बहुत जुटा लेता और जैसे-तैसे टेर हो जाती थी। या कभी किसी की खेती

अधबटिया से ले लेता। दिन-रात खटता, अपने खेत में भी। कहने को किसान और काम से मजदूर।"[61] खेतिहर मजदूर दूसरों के खेतों में काम करता है तरह-तरह के यातनाएं सहता है इसके बावजूद उसकी जरूरतें पूरी नहीं हो पाती हैं।

किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के बीच भूमि संबंधी असमानता को दूर करने के लिए जो भी भूमि सुधार किए गए उनसे खेतिहर मजदूरों को कोई फायदा नहीं हुआ। भूमि संबंधी 'सीलिंग एक्ट' और 'चकबंदी' जैसी योजनाओं से भी खेतिहर मजदूर को कोई फायदा नहीं हुआ। क्योंकि उनके पास ऐसा कोई साधन ही नहीं होता है जिनमें सुधार किया जा सके। इसलिए समाज में गरीब और अमीर के बीच की खाई और भी मजबूत होती गई। एम.एस.श्रीनिवास के अनुसार- "अपेक्षाकृत नए विकास कार्यक्रमों के समताकारी प्रभावों के एक अपवाद की तरफ ध्यान दिया जाना जरूरी है। अन्त्यजों को, जो मुख्यतः भूमिहीन मजदूर होते हैं, अक्सर सिंचाई परियोजनाओं और चकबंदी से कुछ नहीं मिल पाता। उनके पास कुछ नहीं होता, कुछ भी नहीं, जिसे सुधारा जा सके, आर्थिक शुरुआत कर पाने का कोई साधन नहीं। और इसलिए वे आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े रह जाते हैं। अक्सर होता यह है कि विकास योजनाओं के कारण उनके और बाकी ग्रामीणों के बीच खाई कम होने की जगह चौड़ी होती चली जाती है।"[62]

किसान की पत्नी को भी दूसरों के घरों और खेतों में जाकर काम करती है। इन सबके बावजूद उनके परिवार को भरपेट भोजन मुश्किल से मिल पाता है। रामप्रसाद की पत्नी कमला की भी यही हालत है। वह भी अपना घर चलाने के लिए दूसरों के घर मजदूरी करती है। राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास का रणसिंह भी भूमि समस्या से ही ग्रसित है। उसकी पत्नी पारबती दिन-रात खेत में काम करती है। रणसिंह मुन्नी से अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहता है- "कोई क्या करे बो मुन्नी। मेरे को कोई पिणसण तो लगी है नईं। जघै जमीन कबीले को पूरी रोटी न देती है। आज दिन तक दिहाड़ी बाहके ई टब्बर पाला। अब बी ई टब्बर आठों पहर सिर पर सवार हिया। अब अपना सरीर तो चले न चले।"[63] खेतिहर मजदूर

के पास जब तक काम करने की ताकत हो तभी तक उसका पेट भर सकता है। नहीं तो उसके खाने को भी लाले पड़ जाएं क्योंकि दिन-भर किये गए काम की मजदूरी ही उसके जीने का सहारा होती है।

4.4 खेतिहर मजदूरों का पारिवारिक और सामाजिक संघर्ष

खेतिहर मजदूर को को जमीन आदि समस्याओं के साथ-साथ पारिवारिक और सामाजिक संघर्षों का सामना भी करना पड़ता है। खेतिहर मजदूर के पारिवारिक संघर्ष की बात करें तो उसे जीवन में बहुत से उतार-चढ़ाव से गुजरना पड़ता है। एक किसान के पास कम से कम उसकी जमीन का आधार होता है, किन्तु खेतिहर मजदूर का जीवन निराधार होता है। उसे तो अपनी मजदूरी का ही सहारा होता है। वह कितनी भी मेहनत कर ले किन्तु उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता है। ऐसी ही समस्या एम.एम चन्द्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में देखने को मिलती है। फतह जो गाँव छोड़कर शहर मजदूरी के लिए जाता है, परिस्थितियां फिर उसे गाँव वापस ले आती हैं। वह बल्ली से कहता है कि- "मेहनती आदमी नहीं, पहले खेतिहर मजदूर था, फिर मजदूर बना और फिर से खेतिहर मजदूर बन जाऊंगा। बल्ली भाई, मेहनती और ईमानदार होना, हमारा नसीब नहीं बदलता।"[64]

खेतिहर मजदूर का पारिवारिक जीवन बहुत ही संघर्षमय होता है। वह अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मजदूरी करता है, इस कारण उसके परिवार के अन्य सदस्य अपने आप मजदूरी नाम के पेशे से जुड़ जाते हैं। उनके बच्चे खेलने और खाने की उम्र में दूसरों के खेतों में काम करते हैं, उनकी पत्नी भी पारिवारिक जरूरतों को पूरा करने के लिए दूसरों के खेतों में काम करती है। खेतिहर मजदूरों की ये समस्या हमें सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में देखने को मिलती है। नारायण काम की तलाश में शहर जाता है तो उसकी पत्नी कमला गाँव में दूसरों के खेतों में मजदूरी करती है। नारायण के पूछने पर कहती है- "दिन भर एकली घर में कई करूँ तो मैं बलाई मोहल्ला की औरतां का साथ मजूरी करने जाने लग गई।"[65]

सामाजिक स्तर पर ऐसे कई कार्य होते हैं जिनमें उन्हें शामिल नहीं किया जाता है। यदि किसान अपनी समस्याओं को लेकर लड़ाई लड़ सकते हैं तो खेतिहर मजदूर भी अपनी समस्याओं को लेकर विरोध कर सकते हैं, लेकिन समाज में ऐसा देखने को नहीं मिलता है। जब भी कोई खेती-किसानी को लेकर कोई पंचायत होती है तो उनमें सिर्फ किसान ही शामिल किये जाते है। खेतिहर मजदूरों के लिए उस पंचायत में कोई जगह नहीं होती है दूसरी बात उनके ऊपर काम का बोझ इतना ज्यादा होता है की वे चाहकर भी इनमें शामिल नहीं हो पाते हैं। खेतिहर मजदूर की ऐसी ही समस्या हमें एम.एम.चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में देखने को मिलती है। फतह एक खेतिहर मजदूर है, जो गाँव के ही किसान बल्ली के खेतों में मजदूरी करता है। उनके गाँव में जब भी किसानों की समस्याओं को लेकर बातचीत होती है तो वह वहां मौजूद नहीं रहता है। उसका बेटा फतह जब उसे पंचायत में जाने के लिए कहता है तो उसका सीधा सा जबाब होता है- "बेटा ! मुझे तो बल्ली के खेतों पर जाना है। यदि मैं किसान पंचायत में जाऊंगा तो खेतों की देखभाल कौन करेगा ? और फिर बल्ली ने बड़े भरोसे पर मुझे काम दिया है।"[66]

इसी प्रकार यदि हम राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास की बात करें तो उसमें भी यह समस्या दिखाई देती है कि खेतिहर मजदूर किस तरह से दूसरे के बनाये हुए समाज को अपना लेता है। वह स्वयं मजबूर होता है फिर भी वह औरों की समस्याओं से दुखी होता है। किसान के पास भूमि होता है फिर भी वह मजबूर होता है किन्तु खेतिहर मजदूर के पास कुछ न होने पर वह अनेक समस्याओं से गुजरता है। उसे जब किसान मजबूर दिखाई देता है तब वह उनसे मजदूरी तक नहीं मांग पाता है। यही हालत टेकू की है। प्राकृतिक आपदा के समय किसानों की फसल नष्ट होने पर वह उनसे मजदूरी तक नहीं मांग पाता है। वह सोचता है कि- "उस प्रलय के बाद अगले इन छः महीनों महीनों में धरती पर ऐसा सूखा पड़ा कि धान की आने वाले फसल की पूरी आस ही ख़त्म हो गयी। उनके मुंहों को चिढ़ाने के लिए खेतों में चौड़ी दरारें बन आईं| टेकू ने दिहाड़ी पर काम करना माना था, पर उसकी पूरी मजूरी उधार खाते में खड़ी रही। सिर्फ करमसिंह ने उसके पैसे चुकाए थे। बाकी के लोगों ने फसल आने के बाद उसका कर्ज निबटाने का जो

वायदा किया था, वह सिर्फ वायदा ही बना रहा।"[67] यह खेतिहर मजदूर का सामाजिक संघर्ष ही है जो उसे समाज के हर वर्ग से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है और उनकी जीवन पद्धति किसी न किसी रूप में उसे भी प्रभवित करती हैं।

खेतिहर मजदूर के जीवन में कभी स्थायित्व नहीं आ पाता है उसे तो काम की तलाश में इधर-उधर भटकना पड़ता है। एक जगह पर ज्यादा समय तक न टिक पाने के कारण उसका स्वयं का कोई समाज नहीं बन पाता है। ऐसी परिस्थिति में वह जहाँ पर काम की तलाश में जाता है वहीं के समाज से जुड़ जाता है। वह ही नहीं उसके साथ-साथ उसका पूरा परिवार भी उस समाज का होकर रह जाता है। यह एम.एम. चंद्रा के उपन्यास 'गाँव बिकाऊ है' में ऐसे ही खेतिहर मजदूर के समाज का चित्रण है। फतह गाँव में मजदूरी करने के साथ-साथ बल्ली द्वारा दिए गये दायित्व को बखूबी निभाने की कोशिश करता है। इसलिए बल्ली के आत्महत्या करने के पश्चात वह अपने बेटे अघोघ से कहता है- "बेटा ! मैं तो एक मजदूर हूँ। दुखों का पहाड़ भी गिर जाएगा, तब भी मुझे काम तो करना ही है। वरना सभी डांगर भूखे मर जायेंगे, फसल सूख जाएगी। मेरे जैसे व्यक्ति के लिए समय पर काम करना ही, बल्ली के लिए सच्ची श्रद्धांजलि है। ताकि कोई यह यह न कह सके कि बल्ली के अभाव में, फतह काम ही नहीं करता है। ऐसे में मेरे जैसे आदमी पर दुगुनी जिम्मेदारी आ जाती है।"[68]

कहा जा सकता है कि भूमिहीन किसान या खेतिहर मजदूर समाज में हमेशा से शोषित होता आया है। उसके शोषण के लिए समाज एवं सरकार दोनों ही जिम्मेदार हैं। उसकी जीविका का मुख्य श्रोत शारीरिक श्रम है। किंतु पूंजीवाद और बदलते सामाजिक परिवेश ने उनसे उनकी मजदूरी भी छीन ली है। गाँव में खेती का काम सीजन पर निर्भर होने के कारण उन्हें वर्ष भर काम नहीं मिल पाता है। मजबूरन वे शहर की तरफ पलायन करते हैं तो वहां पर नारकीय जीवन जीने को मजबूर होते हैं। सरकार मजदूरों के लिए योजनाएं चलाती हैं किंतु उन्हें उसका लाभ ही नहीं मिल पाता है। गाँव में वे भूस्वामी के शोषण का शिकार बनते हैं तो शहर में फैक्ट्री के मालिकों। मानो शोषित होना ही उनकी नियति है।

संदर्भ

1. भल्ला, जी एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरु भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-1 वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070; संस्करण : 2016; पृ.70
2. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.)अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती कामप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ.153
3. सुखविंदर; भारतीय कृषि में पूंजीवाद विकास (1990 के बाद हुए परिवर्तनों की एक रूपरेखा); राहुल फाउंडेशन 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ- 226006; संस्करण : 2011; पृ. 20
4. शर्मा, रामविलास; भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद; हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 10 केवेलरी लाइन, दिल्ली- 110007; संस्करण : 2015; पृ. 50
5. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 53
6. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास(1850-1947); राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002; संस्करण : 2015; पृ. 70
7. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 52
8. वही; पृ. 52
9. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि(सं.) अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती कामप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ. 64
10. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 52
11. बो, मिशेल; पूंजीवाद का इतिहास (1500-2000); ग्रंथ शिल्पी, प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ. 145
12. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 168
13. कृष्णराज, मैत्रेयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह, रजनी कुमारी; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरु भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-11 वसंत कुंज, नई दिल्ली- 110070; संस्करण : 2014; पृ. 28
14. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 294
15. वही; पृ. 57
16. वही; पृ. 57
17. वही; पृ. 59
18. ये फसल उम्मीदों की हमदम (मध्य बिहार में जनसंहार और किसान संघर्ष); सचिव, पीपुल्स यूनियन डेमोक्रेटिक राइट्स (पी.यू. डी.आर); पृ. 8
19. शिशिर, कर्मेंदु; बहुत लम्बी राह; यश पब्लिकेशन 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110032; संस्करण : 2015; पृ. 10

20. प्रसाद, प्रधान हरिशंकर; खेतिहर समाज; फिलहाल ट्रष्ट, एम- 46/2 श्रीकृष्णनगर, पटना-800001; संस्करण : 2006; पृ. 27
21. (सं.) हिल्टन, रोडनी; सामंतवाद से पूंजीवाद में संक्रमण (अनु.) प्रदीपकांत चौधरी; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली 110092; संस्करण : 2007; पृ. 46
22. शिशिर, कर्मेंदु; बहुत लम्बी राह; यश पब्लिकेशन 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110032; संस्करण : 2015; पृ. 39
23. वही; पृ. 95
24. वही; पृ. 103
25. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली- 11000; संस्करण : 2010; पृ. 253
26. शिशिर, कर्मेंदु; बहुत लम्बी राह; यश पब्लिकेशन 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110032; संस्करण : 2015; पृ. 130
27. वही; पृ. 191
28. वही; पृ. 215
29. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज –11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 30
30. सिंह, सूर्यनाथ; चलती चाकी; सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2020; पृ. 233
31. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास (1850-1947); राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2015; पृ. 22
32. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 81
33. राय, शिवाजी; पहचान की तलाश में; फिलहाल (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट, एम-46/2, श्रीकृष्ण नगर, पटना-800001; जनवरी-फ़रवरी 2018; पृ. 18
34. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 81
35. राय, शिवाजी; पहचान की तलाश में; फिलहाल (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट, एम-46/2, श्रीकृष्ण नगर, पटना-800001; जनवरी-फ़रवरी 2018; पृ. 18
36. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 81
37. झा, धीरेन्द्र; खेत मजदूर : हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 124
38. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 81
39. बो, मिशेल; पूंजीवाद का इतिहास (1500-2000); ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ. 149

40. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/ यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 96
41. वही; पृ. 96
42. वही; पृ. 96
43. बंद्योपाध्याय, शेखर; प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद आधुनिक भारत का इतिहास(अनु.) नरेश 'नदीम'; ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड; संस्करण : 2008; पृ. 366
44. सिंह, सूर्यनाथ; चलती चाकी; सामयिक प्रकाशन 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2020; पृ. 233
45. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एस.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकुला-134113 (सेक्टर-16); संस्करण : 2015; पृ. 86
46. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज- 11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 16
47. वही ; पृ. 28
48. झा, धीरेन्द्र; खेत मजदूर : हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 124
49. मिथिलेश्वर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2018; पृ. 26
50. वही; पृ. 141
51. विराट; बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों का मूल और उनके समाधान का प्रश्न; आह्वान; (सं.) अभिनव; रुचिका प्रिंटर्स, 10665, बी-100, मुकुंद विहार, करावल नगर, दिल्ली- 110094; मई-जून, 2014; पृ. 19
52. हबीब, इरफ़ान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी - 7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2017; पृ. 68
53. वही; पृ. 69
54. जोशी, पूरन चंद्र; भारत में भूमि सुधार अध्ययनों का सर्वेक्षण; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ. 19
55. (सं.) प्रसाद, भागवत; भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता मार्गदर्शिका; अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान भारत जननी परिसर, रानीपुर भट्ट सीतापुर चित्रकूट (उ.प्र.) 210204; संस्करण : 2003-2004; पृ. 5
56. प्रसाद, प्रधान हरिशंकर; खेतिहर समाज; फिलहाल ट्रस्ट, एम-46।2 श्रीकृष्णनगर, पटना-800001; संस्करण : 2006; पृ. 22
57. वही; पृ. 18
58. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद - 201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 56
59. वही; पृ. 58
60. कृष्णराज, मैत्रेयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह, रजनी कुमारी; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरु भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज- 11 वसंत कुंज, नई दिल्ली- 110070; संस्करण : 2014; पृ. 14

61. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन, पी. सी लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर- 466001 (म.प्र.); संस्करण : 2017; पृ. 10
62. (सं.) श्रीनिवास, एम.एन.; भारत के गाँव(अनु.) मधु बी. जोशी; राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2011; पृ. 22
63. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एस.सी.एफ. 267, सेक्टर- 16 पंचकुला- 134113 (सेक्टर-16); संस्करण : 2015; पृ. 70
64. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज –11, नई दिल्ली-110020 ; संस्करण : 2019; पृ. 16
65. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 94
66. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज –11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 40
67. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एस.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकुला- 134113 (सेक्टर-16); संस्करण : 2015; पृ. 169
68. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज –11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 59